B.A. II Hons
III Paper

1.

# शुंग कला - SUNGA ART

भारतीय इतिहास में शुंगकाल पुष्यमित्र के राज्याभिषेक से प्रारम्भ होता है (184 ई०पू०)। वह शक्तिशाली सम्राट था जिसने सेनापति की पदवी धारण की और मध्यदेश को विदेशी यवनों से मुक्त किया। महाभाष्य के रचयिता वैयाकरण पंतजली उसी समय में हुए और सम्भवतः उसके यज्ञ में प्रधान पुरोहित थे। यह युग संस्कृत साहित्य और क्रान्तिकारी धार्मिक आन्दोलन का यह काल था जब रामायण, महाभारत एवं पुराणों की रचना और पुनर्गठन के बहुमुखी प्रयत्न हुए।

कला के क्षेत्र में देश के अनेक केन्द्रों में पाषाण-घटित शिल्प और स्थापत्य का व्यापक प्रचार हुआ। स्तूप, तोरण-वेदिका और मूर्तियों की रचना के लिए पत्थर का प्रयोग सामान्य बात हो गई। भरहुत, साँची और अमरावती जैसे महाचैत्य या बड़े स्तूप इस युग में बने। शुंगकालीन कला में रस, रूप और आनन्द को विशेष स्थान दिया गया है।

शुंग कला की यह विशेषता है कि इसमें सैकड़ो मार्गों से लोक के प्राणवन्त जीवन को अभिव्यक्त होने का स्थान मिला है। अनेक प्राचीन अलंकरणों की पुस्तक के अध्याय इस युग में मानों खुलने लगता है। श्री लक्ष्मी, पूर्णघट, उत्तर-कुरु के वृक्ष, धर्मचक्र, त्रिरत्न, कल्पवृक्ष, मकर कच्छप, पक्ष-पक्षी, नाग-नागी, वृक्ष, स्तूप एवं पशुओं में से - सिंह, अश्व हस्ती, आदि पशुओं की पूजा, देवी-देवियाँ, देवप्रासाद, पुष्पमालाएँ, कल्पलता, सरोवर, रत्नमालाएँ, अनेक अभिप्राय मिलते हैं जो एक ओर प्राचीन धार्मिक मान्यताओं के सूचक थे और दूसरी ओर शोभा के लिए कला में अंकित किए जाते थे। शुंग-कला में जितने धार्मिक अलंकरण हैं कि उनका वर्गीकरण और संग्रह करने पर तो भारतीय कला की एक पूरी सौन्दर्य-संहिता ही हमारे सामने आ जाती है। ये मांगलिक चिह्न ही भारतीय धार्मिक जीवन को प्रकट करने वाली धारा रही है। अशोक ने जिस प्रकार के स्तूपों का निर्माण आरम्भ कराया था उनका और अधिक विकास शुंग-युग में हुआ।

स्तूप, चैत्यगृह, विहार, स्तम्भ, चत-शालवेदिका समेत तोरण और देवस्थान - ये शुंग कला की देन है। स्तूप मिट्टी का बड़ा भारी थूहा होता था जो चिता के स्थान पर बनाया जाता था। इसलिए उसे 'चैत्य' भी कहते थे। यह प्रथा बुद्ध से भी पहले से चली आती थी। चिता

Scanned with CamScanner

के स्थान पर स्मृति रूप में पीपल का वृक्ष दे दिया जाता था या मिट्टी का चूहा बना दिया जाता था। दोनों को ही "चैत्य" कहते थे। भारतीय कला के तीन प्रकार के महान प्रारम्भ हैं जिनका दीर्घकालिन विकास-क्रम हमें प्राप्त होता है - एक स्तूप, दूसरे चैत्यगृह और तीसरे देवमन्दिर। इनमें से प्रत्येक का लगभग 12 शताब्दियों तक का निश्चित विकास-क्रम उपलब्ध है। शुंगकाल से मध्य लेकर मध्य काल तक के स्तूपों की कला का अध्ययन किया जाय तो प्रचुर सामग्री हमारे सामने आती है। धार्मिक और वास्तुकला दोनों दृष्टि से स्तूप की प्राचीनता भारतीय कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

स्तूप का सम्बन्ध अब प्रायः बौद्ध-धर्म से माना जाता है पर यह उससे कहीं अधिक प्राचीन था। स्तूप की कल्पना ऋग्वेद में पायी जाती है। वहाँ अग्नि की उठती हुई ज्वालाओं को "स्तूप" कहा है। ऋग्वेद में अंगिरस के एक पुत्र का नाम हिरण्यस्तूप पाया जाता है वह द्युलोक के सविता देव की स्तुति है। ~~जिसकी सुनहली किरणें चारों ओर स्तूप के आकार में~~। हिरण्यस्तूप का शब्दार्थ था सोने का चूहा या ढेर। वैदिक कल्पना के अनुसार सूर्य हिरण्य-स्तूप है जिसकी सुनहली किरणें चारों ओर स्तूप के आकार में फैली हुई हैं। किसी मूलभूत सुवर्ण के स्तूप की कल्पना जैन-साहित्य में भी पाई जाती है। जहाँ मथुरा के प्राचीन स्तूप को देव-निर्मित स्तूप कहा है। वस्तुतः विराट् प्राण तत्व की संज्ञा हिरण्यस्तूप थी। वहाँ हिरण्य का अर्थ दिव्य प्राण है।

शुंग युग को स्तूप वास्तु का स्वर्णिम काल कह सकते हैं। शुंगों ने उत्थापन तथा सातवाहनों ने संविधापन में अशोक द्वारा स्थापित इष्टकामय स्तूपों को शिला कवचकों से आच्छादित कर उन्हें अल्पेशाख्य से महेशाख्य के रूप में परिणित किया। पाषाणमय वेदिका, तोरणद्वार तथा चपिरछत्र इसी युग में निर्मित हुए। महात्मा बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन तोरणद्वारों एवं वेदिकाओं पर अंकित किया गया। यद्यपि अधिकांश स्तूप विनष्ट हैं किन्तु गौण पूर्णतया अवशेष रूप में उपलब्ध हैं उन से न मात्र वास्तुकला का इतिहास वरन तत्कालीन सांस्कृतिक इतिहास का पुनर्जागरण होता है। शुंग-स्तूपों में भरहुत एवं सांची के स्तूप

विशेष उल्लेखनीय हैं। जिन्हें शुंग कला का प्रतिनिधि स्तूप कहा जा सकता है। शुंग-युग में स्तूप वास्तु में भी मौलिकता की धारा प्रवाहित हुई, इसी में सांची के स्तूप का पूर्ण स्वरूप निर्धारित हुआ।

शुंग कला की विशेषता स्तूप वास्तुकला में है। इस प्रकार स्तूप वास्तुकला में सांची का स्तूप वास्तुगत सौन्दर्य, उपासनात्मक प्रतिक्रिया एवं प्रतीकात्मक व्याख्या के लिए निश्चित ही एक उपयुक्त उदाहरण है। यद्यपि स्तूप निरन्तर गुप्त युग तक परिवर्तित होता रहा किन्तु मुख्य शुंग-युग में पूर्णता प्राप्त कर चुके थे। इसलिए इसे शुंग कलाओं की वैशिष्ट्यपूर्ण कलात्मक अभिव्यक्तियों की अभिव्यक्ति कह-सकते हैं। संभवतः सांची तोरणद्वार परम्परा को ही आदर्श स्वीकार करते हैं।